प्राचीन नीतिशास्त्रीय परंपरा और कबीर

विष्णु चन्द गौड़

सहायक आचार्य (दर्शनशास्त्र)
एम. एस. जे. राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय
भरतपुर.

सार:

प्राचीन भारत में नीतिशास्त्रीय परंपरा धार्मिक कर्मकांडों, देव पूजन और प्रकृति पूजा पर केंद्रित थी। वैदिक युग में कर्मकांडों के बढ़ते वर्चस्व के कारण तपस्वी वृत्ति का विकास हुआ, जिससे ज्ञानवाद और योग का उदय हुआ। बाद में जैन और बौद्ध धर्मों ने कर्मकांडों के विरोध और सद्गुणों पर जोर दिया। इस परिवर्तनकारी वातावरण में, कबीर ने समाज की विकृतियों को उजागर किया और व्यक्तिगत नैतिकता और ईश्वर की भक्ति पर जोर दिया। उन्होंने ऊँच-नीच और धार्मिक विभाजन की आलोचना की और प्रेम, करुणा और सत्य पर आधारित एक सर्वव्यापी ईश्वर की उपासना का प्रचार किया।

भले ही कबीर का जन्म सदियों पहले हुआ था, उनकी शिक्षाएं वर्तमान समय में भी प्रासंगिक हैं। आज भी कबीर की आवाज धार्मिक कट्टरता और धर्म के नाम पर भेदभाव के खिलाफ गूंजती है। कबीर की जाति व्यवस्था और भौतिकवाद की आलोचना समाज में व्याप्त असमानताओं को संबोधित करती है। भौतिकवाद के वर्चस्व वाले युग में, कबीर की अंतर्मुखी खोज और ईश्वरीय अनुभव का संदेश प्रासंगिक बना हुआ है। कबीर की प्रकृति से सद्भाव में रहने की शिक्षाएँ आज की पर्यावरणीय चिंताओं के लिए एक अनुस्मारक के रूप में कार्य करती हैं। सच्चाई, करुणा और अहिंसा पर कबीर का जोर आज भी नैतिक सिद्धांतों को बनाए रखने की आवश्यकता को उजागर करता है।

मुख्य शब्द: धर्म, कर्मकाण्ड, नैतिक, आध्यात्मिक, शिक्षा, जाति, सदाचार, तप, आधुनिकता.

कबीर प्राचीन भारतीय नीतिशास्त्र की परंपरा में एक उल्लेखनीय व्यक्ति थे। उनकी शिक्षाएँ समाज की बुराइयों की आलोचना करती हैं, व्यक्तिगत नैतिकता पर जोर देती हैं और एक दयालु और न्यायपूर्ण समाज के निर्माण के लिए मार्गदर्शन प्रदान करती हैं। भले ही सदियों बीत चुके हैं, कबीर की शिक्षाएँ आज भी प्रासंगिक हैं और व्यक्तियों और समाज को एक बेहतर भविष्य की दिशा में ले जाने के लिए एक आधार प्रदान करती हैं।

वैदिक युग में हमारे पूर्वजों का जीवन अत्यन्त सरल था और उनके कार्यों में भी कोई जटिलता नहीं थी। देवों और पितरों के क्रोध से बचने हेतु देव-पूजन, पितृ-पूजन तथा यज्ञ पर जोर दिया जाता था।

वे प्रकृति के भीतर निहित शक्तियों के प्रतीक देवरूपों के समक्ष स्तुति, प्रार्थना, पशु-बलि देते थे। उस समय जादू-टोना, मंत्रों का प्रयोग भी प्रचलित था। वैदिक युग में धार्मिक कर्मकाण्डों, यज्ञों और प्रार्थनाओं के माध्यम से लोग देवताओं और पितरों को खुश रखने का प्रयास करते थे। वे श्रद्धा और आस्था के साथ सांसारिक घटनाओं, आपदाओं और मनुष्य के भाग्य का निर्धारण करने वाले देवताओं की पूजा करते थे। मान्यता थी कि ये देवताएं प्रकृति के विभिन्न पहलुओं को नियंत्रित करते हैं। इनकी प्रार्थनाओं व अनुष्ठानों से प्राप्त देव-कृपा के माध्यम से दुश्मनों पर विजय प्राप्त करते हुए मनुष्य संसार में भौतिक सुख-संपत्ति के साथ अपना जीवन यापन कर सकते हैं। लेकिन कर्मकाण्ड और बाह्य आडम्बरों के बढ़ते प्रभाव से वैदिक युग में ही यज्ञ में पशु-हिंसा, वीभत्सता बढ़ने लगी। इस कारण व्रात्य लोग यज्ञादि से दूर रहते हुए एकाग्रता में तप करने लगे। वे यज्ञों से प्राप्त कर्म-फलों को अनित्य मानते थे और जरा-मरण के चक्र से तथा सांसारिक दुःखों से पूर्णतः निवृत्ति के लिए प्रयासरत थे। सांख्यदर्शन का ज्ञानवाद इन्हीं तापसियों के चिन्तन-मनन का फल था। सांख्यदर्शन के ज्ञानवाद के साथ तपोविद्या का मेल हो जाने से जैगीषव्य द्वारा योगमार्ग का प्रारम्भ हुआ। इस प्रकार संतानोत्पत्ति करके तप और संयम के साथ जीवन-यापन करते हुए सदाचरण पर बल दिया जाने लगा। व्यक्तियों को अपने किये हुए कर्मों का ही अच्छा या बुरा फल मिलता है। इसमें देवों का कोई हाथ नहीं है। आचार्य परशुराम चतुर्वेदी के अनुसार, "आर्यों के इतिहास के प्रारंभिक युग में जो साधना पहले सीधे-सादे स्तुति-गान या पशु-बलि से आरंभ हुई थी, वह क्रमशः यज्ञ, कर्म, तपश्चर्या, तत्त्वज्ञान, सदाचरण तया भक्ति के पृथक् पृथक् रूप धारण करने लगी और इस विविधता के कारण मतभेद का भी अवसर आ उपस्थित हुआ। साधना की विभिन्नता के आधार पर समाज में भिन्न-भिन्न वर्गों की सृष्टि होने लगी जिनमें से एक दूसरे को स्वभावतः पराया समझने लगा।" [1]

वैदिक परम्परा के विरोध में इन्हीं दिनों यज्ञ-संबंधी पशुबलि एवं कर्मकाण्डों के विरुद्ध दो अन्य आंदोलन 'जैन धर्म' तथा 'बौद्ध धर्म' उठ खड़े हुए जिनमें न तो किसी देवोपासना को स्थान था और न कोई ईश्वरार्पण की भावना ही आवश्यक थी। इन दोनों धर्मों का प्रधान लक्ष्य "शुद्ध सात्विक जीवन" था। इनके सामने तत्वमीमांसीय समस्याओं से ज्यादा मानव की महत्ता तथा उसके पूर्ण विकास का प्रश्न कहीं अधिक मूल्यवान् था। जैन-बौद्ध धर्म की चुनौती से प्राचीन वैदिक जीवन के पुनरुद्धार की आवश्यकता महसूस हूई।
इससे सदाचरण का स्वरूप सत्कर्म से बढकर धर्म का समानार्थक शब्द माना जाने लगा। सदाचरण अब 'सदाचार' के रूप में 'दशकं धर्म लक्षणम्' (धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रिय-निग्रह, घी, विद्या, सत्य तथा अक्रोध) के द्वारा स्पष्ट करने की चेष्टा भी मनुस्मृति में की गई। जैन धर्म तथा बौद्ध धर्म ने सदाचरण को सबसे अधिक महत्त्व दिया था। जैन धर्म में अहिंसा, निष्कामता, मनोविजय, आत्मसंयम जैसी सदाचरण-संबंधी बातों की ओर विशेष ध्यान दिया गया। जैनधर्म में नीतिशास्त्र का बहुत सूक्ष्म अध्ययन किया गया है और हिंसा का पूर्णत: निषेध किया गया है। जबकि बुद्ध के द्वारा 'खंति' (क्षमा), 'सील' (शील), 'पञ्जा' (प्रज्ञा), 'मेत्ता' (मैत्री), 'सच्च' (सत्य), 'विरीय' (वीर्य) बोधिसत्व

के आदर्श गुण माने गए और चित्त की शुद्धि को महत्त्वपूर्ण माना गया। जैन धर्म के बजाय बौद्ध धर्म मध्यम मार्ग अपनाता है। तथापि बौद्ध धर्म में चार आर्य सत्य, अष्टांगिक मार्ग, षड़पारमिता, ब्रह्मविहार, करूणा और महाकरूणा इत्यादि की विस्तृत विवेचना की गई है। संघ में महिलाओं के प्रवेश-पश्चात् महिलाओं के ऊपर भी आचरणपरक नियम लागू किए गए। थोड़े-से मतभेद के साथ प्रायः इन्हीं सद्गुणों को अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय तथा ईश्वरप्रणिधान के नाम देकर योग-साधना ने भी अपने यहाँ यम-नियमों के रूप में स्थान दे दिया।

इस विषम परिस्थिति में कर्तव्य-अकर्तव्य के पुनर्निर्धारण की आवश्यकता महसूस होने लगी। इसलिए अर्जुन और कृष्ण के बीच संवाद के रूप में 'भगवद्-गीता' का प्रणयन द्वारा निष्काम कर्म एवं लोकसंग्रह की अवधारणाओं के माध्यम से ज्ञानयोग, कर्मयोग और भक्तियोग का समन्वय कर दिया गया। निवृत्तिमार्गी 'ज्ञानयोग' मार्ग की आत्मोपासना करने हेतु तपश्चर्या पर जोर देते थे। जबकि प्रवृत्तिमार्गी 'कर्मयोग' का जोर कर्मोपासना पर था जिसके अनुसार मनुष्य को अपने वर्ण-आश्रम आधृत कर्मों का निर्वाह उन्हें यज्ञ वा कर्तव्य मानकर करना था जिससे आत्यन्तिक सुख की प्राप्ति हो। श्रीकृष्ण ने 'ज्ञान-कर्म-योग समुच्चय' के साथ ही भक्ति-योग भी जोड दिया जिससे निष्काम भावना के साथ सदाचरण करने का एक सरल मार्ग निकल आया। ज्ञान, संकल्प और इच्छा की मनोवृत्ति से संपन्न सभी जीवात्माओं के लिए कर्तव्य या अकर्तव्य का प्रश्न, श्रेय और प्रेय की समस्या एक प्रकार से हल हो गई।

पौराणिक युग ने वैदिक धर्म में कुछ सुधार कर वर्णाश्रम धर्म को बनाए रखने की कुछ चेष्टा की। किंतु 'गीता' में बताए गए समन्वय तथा सामंजस्य के स्थान पर वैदिक युग की पुनर्स्थापना करने के चक्कर में पुनः कर्मकाण्डों की जटिलता बढने लगी। जैन एवं बौद्ध धर्म के विरोधी मतों के साथ निरंतर संघर्ष चलते रहने के कारण पौराणिक हिन्दू-समाज का ज्यादा ध्यान प्राचीन व्यवस्थाओं को ज्यों के त्यों रखना ज्यादा था। परिणामस्वरूप धरातल पर सुधार नहीं हो पाए और नवीन व्यवस्थाओं की उलझनों और बाह्य आक्रमणों ने हिन्दू समाज को और भी खोखला बना दिया। उस समय न केवल बौद्ध तथा जैन धर्म ही, अपितु स्वयं वैष्णव, शाक्त, शैव - जैसे हिन्दू सम्प्रदायों ने भी अपने-अपने भीतर अनेक मतभेदों को जन्म दे रखा था।
साथ ही प्राचीन तंत्रमूलक साधना जिनकी चर्चा वेदों व उपनिषदों में भी मिलती है, का निरन्तर विस्तार चलता रहा। वेदाचार, वैष्णवाचार, बौद्ध-तंत्र (अवधूती मार्ग, रागमार्ग, डोंबी मार्ग, चांडाली मार्ग इत्यादि), शक्ति-तंत्र, शैवाचार, वामाचार, दक्षिणाचार, सिद्धांताचार, कौलाचार इत्यादि के द्वारा पृथक पृथक साधनाएँ एवं पद्धतियाँ विकसित हूई। देवदासी जैसी कुप्रथाएं भी प्रचलित हूई। तंत्र-मंत्र, जटिल ध्यान व उपासना पद्धति, जटिल मूर्तिपूजा पद्धति ने सामान्य मनुष्य के जीवन को और भी कठिन बना दिया। अतएव इनके पारस्परिक आडम्बरपूर्ण मतभेदों के कारण विभिन्न पंथ और शाखा

एक दूसरे के प्रति द्वेष, कलह या प्रतियोगिता रखते थे और पाण्डित्यपूर्ण प्रदर्शन के लिए इन्हें पर्याप्त प्रोत्साहन मिला। इससे कई बार इनमें अनेक प्रकार के झगड़े भी उठ खड़े हुए।

प्रारम्भ में बौद्ध तथा जैन धर्म वस्तुतः सुधारपरक सिद्धांत लेकर चले और उन्होंने बिना किसी प्राचीन ग्रंथ की सहायता लिये, केवल स्वतंत्र विचारों वा अनुभूतियों के आधार पर ही अपने आदर्शों की स्थापना की। लेकिन उच्च वर्ग में पैठ बनाने के लिए एवं कठिन दार्शनिक सिद्धांतों के प्रतिपादन हेतु अनेक ग्रंथों की रचना संस्कृत भाषा में भी होने लगी। अवतारवाद के प्रभाव से तीर्थंकरों एवं जातक-कथाओं में बुद्ध के विभिन्न अवतारों के आख्यान रचे गए। धर्म का सरल रूप जटिल बन गया और कर्मकाण्ड व आडम्बरों क़ा प्रभाव इन पर भी पड़ा। प्राचीन वैदिक धर्म, जैन धर्म एवं बौद्ध धर्म की अनेक शाखाएं विकसित होने से कर्तव्य-निर्धारण का प्रश्न महत्वपूर्ण बन गया। ऐसे में इस्लाम जैसे नवान्तुक धर्म ने भारत में प्रचलित विभिन्न पंथों के समक्ष महत्वपूर्ण चुनौती प्रस्तुत की।

VAUDEVILLE के अनुसार, "For the first time, historians and chroniclers refer to the local Muslims as 'Hindustanis'. Some converts, such as Mālik Kafür, were occupying the highest positions in the state. The efforts of Muslim missionaries and propagandists, especially Sufis, had begun to bear fruit and a sizeable number of educated Muslim converts were available for the service of the state." [2]

हिन्दु और मुस्लिम संस्कृति के इस परस्पर मेल से कबीर जैसे महान संत का निर्माण हुआ। आज उत्तर भारत की हिंदी भाषी जनता में तुलसी के रामचरितमानस के उपरान्त यदि किसी अन्य कवि का काव्य लोगों की जबान पर चढ़ा हुआ है, तो वह कबीर ही है। कबीर की साखियाँ, उनके पद लोगों को कंठस्थ हैं, जिन्हें वे अनेक अवसरों पर उदाहरण स्वरुप प्रस्तुत करते हैं। कबीर को जो लोकप्रियता प्राप्त हुई उसका मूल कारण यह है कि उनके काव्य में शास्त्रीयवाद और कर्माड़म्बर के अहंकार से अलग हटकर तत्कालीन मानव के संघर्षरत जीवन की अनुभूति की सच्चाई और अभिव्यक्ति का खरापन है। उन्हें जो अच्छा लगा उसका खुलकर समर्थन किया और उन्हें जो बुरा लगा उसका विरोध उन्होंने उसी निर्भीकता के साथ किया चाहे इसके लिए उन्हें निर्वासित होना पड़ा। कबीर छुआछूत का जिस प्रकार विरोध करते हैं, वह सीधे दिल को छूता है और हमें पुनः सोचने पर बाध्य करता है। कबीर के शब्दों में, "जल में छूत है, थल में छूत है और किरणों में भी (ग्रहण के अवसर पर) छूत है। जन्म में भी छूत है, और फिर मरने में भी छूत है। इस प्रकार तूने सूतक से जल कर (परज कर) अपना नाश कर लिया। कह तो रे पंडित ! कौन पवित्र है ? मेरा मित्र बन कर ऐसा गाता फिरता है? आँखों में भी छूत है (कहीं शूद्र की दृष्टि न पद जाय) बोली में छूत है (कहीं शूद्र से बात न हो जाय) और कानों मे भी छूत है। (कहीं शूद्र की बात कान में न पड़ जाय)। उठते-बैठते तुझे छूत लगती है।

यहाँ तक कि भोजन में भी छूत पहुँच जाती है। इस प्रकार कर्म-बंधन में फँसने की विधि तो सभी कोई जानते है, मुक्त होने की विधि कोई एक ही जानता है। कबीर कहता है कि जा गम को हृदय में विचारते हैं, उन्हें छूत नहीं लगती।" [3]

भारत भूमि ऐसे संत-महात्माओं, सूफियों को हमेशा सम्मान की दृष्टि से देखती रही। आज भी यह देश संन्यासी जीवन जीने वाले लोगों के पीछे कभी-कभी पागल हो जाता हैं; जैसे अन्ना हजारे जैसे समाजसेवी के एक आह्वान पर करोड़ों लोग इकट्ठे हो गए। कबीर का भी ऐसा खरा स्वभाव लोगों को पसंद आया और इसीलिए कबीर तत्कालीन जनता के कंठहार बन गए। पुरुषोत्तम अग्रवाल के अनुसार, "कबीर की संवेदना के ये तीन पहलू - प्रेम, मृत्यु और समाज - परस्पर गुंथे हुए हैं। ..... कबीर की ही नहीं, यह गुंथाव हम सब की संवेदना की सच्चाई है। हमारी इस संवेदना को उद्‌बुद्‌ध करने वाली भाषा कबीर के पास है। सीधे बयान की विधि से, व्यंग्य-विडंबना की रचना से; और व्यंजक, मार्मिक बिंबों का निर्माण करके कबीर हमारी इस मूल मानवीय संवेदना में भावोन्मेष करते हैं - बहुत गहरा भावोन्मेष। .... यदि ध्यान रखें कि धर्म-जाति के नाम पर कबीर के समकालीन ही नहीं बौराए हुए थे, हम भी बौराए हुए हैं। कबीर की कविता हमें भी आईना दिखाती है। हमें भी याद दिलाती है कि प्रेम में भर कर और मर कर ही मनुष्य अमरता प्राप्त करता है। हमें भी सिखाती है कि सबसे बुनियादी और सबसे मार्मिक साधना यही है कि अपनी सहज मनुष्यता को अर्जित किया जाए, उसे बनाए रखा जाए। कबीर की कविता हमें भी जीवन की विसंगतियों और बेहूदगियों पर हंसना-रोना सिखाती है।" [4]

यूरोप के मध्यकालीन युग की तुलना में भारत में परिवर्तन और सुधार की लहर निरन्तर चलती रही है। वैदिक कर्मकाण्ड के विरूद्‌ध महावीर स्वामी और महात्मा बुद्‌ध ने उद्‌घोष पैदा किया। बौद्‌ध धर्म से प्रभावित होकर युद्‌धों में महान अशोक ने युद्‌धों की राह छोडकर शांति की राह अपनाई। शंकराचार्य ने वैदिक धर्म का पुनरुद्‌धार करते हुए विश्व का सर्वश्रेष्ठ दर्शन अद्‌वैतवाद दिया। रामानुजाचार्य और उनकी परम्परा में रामानन्द ने मर्यादा पुरूषोत्तम राम को जन-जन का आराध्य बना दिया। मानव रूप में भी मनुष्य अपने सर्वश्रेष्ठ आचरण से ईश्वरत्व का दर्जा पा सकता है। परम सत्ता कण-कण में निहित है। तुलसी ने जहाँ संस्कृतनिष्ठ शास्त्रीय धर्म को देशज हिन्दी में गाकर लोकधर्म में स्थापित करने का कार्य किया। लेकिन कबीर ने सहज सरल जीवन जीते हुए समाज में तत्कालीन बुराइयों के खिलाफ अपनी आवाज बुलन्द की। पुनर्जागरण से उत्पन्न आधुनिकता की झलक कबीर की वाणी में देखने को मिलती है। पुरूषोत्तम अग्रवाल रचित 'अकथ कहानी प्रेम की' में कबीर की देशज आधुनिकता के स्वरूप को उद्‌घाटित किया है। श्री अशोक वाजपेयी के शब्दों में, "ऐसी आधुनिकता को गढ़ने में देशी भाषाओं की भूमिका और लोकजीवन और व्यवहार की केंद्रीय भूमिका का ऐसा विशद निरूपण मेरे जाने, हिन्दी में तो क्या, अन्यत्र भी इससे पहले शायद ही हुआ है।" [5]

भारत में परम्परा, चिंतन और संस्कृति की निरन्तरता में कबीर आधुनिक युग के प्रथम उद्घोषक रहे थे। लेकिन अंग्रेजी से प्रभावित वर्ग कबीर की ओर तभी प्रभावित हुआ जब अंग्रेजी भाषा में कबीर का कार्य प्रकाशित होने लगा है। भारत और चीन भले ही आधुनिक औद्योगिकीकरण से अछूते रहे हो लेकिन आधुनिकता की लहर सतत बहती रही है और आज भी बह रही है। कबीर मध्ययुग में इसी आधुनिकता के प्रवर्तक रहे हैं।

कबीर तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था, धर्म, परम्परा और मान्यताओं के रूपान्तरण की माँग करते हुए आधुनिक मनुष्य के चित्त के समीप लगते है। इसीलिए बहुत से समुदाय या पंथ उन्हें अपना पूर्व पुरुष मानते हैं। कोई उन्हें ईसाई मिशनरी के पूर्व पुरुष के रूप में देखता है तो कोई सूफी के रूप में। जिसे कोई हिन्दू धर्म की रक्षक का श्रेय देना चाहता है, तो कोई हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए समर्पित। किसी के अनुसार नवीन पंथ (कबीर पंथ) के प्रवर्तक है तो किसी के हिसाब से जो हिन्दू धर्म और इस्लाम से सर्वथा स्वतन्त्र नए धर्म का प्रतिपादक। कोई वैष्णव मत में शामिल कर लेता है तो कोई उन्हें नाथपंथी मान लेता है।

कबीर साहब की आध्यात्मिक और नैतिक शिक्षाएँ समकालीन भारत में आज भी प्रासंगिक बनी हुई हैं। सामाजिक असमानताओं, भौतिकवाद और नैतिक दुविधाओं से जूझ रहे तेजी से बदलते समाज में, ये शिक्षाएँ आध्यात्मिक और नैतिक दिशा-निर्देश प्रदान करती हैं। वे व्यक्तियों को अपने दैनिक जीवन में प्रेम, करुणा, सत्य और सेवा जैसे गुणों को विकसित करने के लिए प्रेरित करते हैं। धर्मेन्द्र दास के अनुसार, "समाज का बाह्य रूप बदलने तथा लोगों के जीवन स्तर में बड़ा परिवर्तन होने के बाद भी कुछ ऐसी समस्याएं जो संत कबीर के समय में थीं, आज भी बनी हुई हैं। बल्कि कुछ समस्याओं ने तो ऐसा विकराल रूप धारण कर लिया है जिनका शीघ्र ही निराकरण नहीं किया तो उसका भीषण दुष्परिणाम पूरे मानव समाज को भुगतना होगा। काल्पनिक जाति-पांति को लेकर ऊंच-नीच की भावना तथा सांप्रदायिक कटुता तो अपनी जगह है ही, स्वार्थपरता तथा भोग परायणता के कारण आज मनुष्य मनुष्य का शोषण ही नहीं कर रहा है अपितु वह दूसरों की लाशों पर अपना भव्य-भवन बनाना चाह रहा है। जब पूरा समाज अनेक वर्गों एवं खेमों में बंटता जा रहा है, मनुष्य मनुष्य के दिल की दूरियां बढ़ती जा रही हैं, एक अनदेखी खाई अधिक गहरी और चौड़ी होती जा रही है, सभी मानवता एवं सत्य प्रेमियों को यह अहसास हो रहा है कि कबीर ही एक ऐसे मिलन बिन्दु है जहां सब एकत्र हो सकते हैं और एक दूसरे से सच्चे अर्थों में मिल सकते हैं।" [6]

कबीर की शिक्षाएँ प्रेम, करुणा और नैतिक अखंडता के शाश्वत संदेश को प्रतिध्वनित करती हैं, जो संत साहित्य को भारत के नैतिक और नैतिक परिदृश्य में एक गहरा और स्थायी योगदान देती है। नैतिक और आध्यात्मिक मार्गदर्शन के स्रोत के रूप में, संत साहित्य लोगों को उनकी आध्यात्मिक यात्राओं और एक अधिक न्यायपूर्ण और दयालु समाज बनाने के उनके प्रयासों के लिए प्रेरित करता

रहता है। उपभोक्तावाद, असमानता और पर्यावरणीय चिंताओं से चिह्नित दुनिया में, सादगी, करुणा, निःस्वार्थता और आंतरिक परिवर्तन पर जोर गहन अंतर्दृष्टि और मार्गदर्शन प्रदान करता है। कबीर के शब्दों में, "मैंने पंडित ओर मुल्ला दोनो को छोड दिया है। किसी भी मजहब या संप्रदाय के बंधन से मैं मुक्त हूँ। इसलिए कोई सैद्धान्तिक द्वन्द्व मेरे मार्ग में नहीं है।"..... "मैं तत्त्व के ताने-बाने से अपने लिए दिव्य परिधान तैयार कर उसे धारण करता हूँ।"....."आगे चल कर मैं वहाँ पहुँचा, जहाँ मेरा 'मैं' भी न रहा। उस परम-पद पर स्थित होकर ये पद गाता हूँ, इसलिए ये पद भी परम-पद का सकेत देते हैं।"....."पंडित और मुल्ला ने धर्म-शास्त्र में आशा की है, उसे मैंने नहीं माना है। मैं शास्त्र-बंधन से, सर्वतंत्र-स्वतंत्र हूँ।"..... "हे मीर ! तू भी अपने शुद्ध हृदय में आज ही खोज के अपनी अन्तरात्मा को देख ले तो वहां तुझे कबीर मिल जायगा।" "मैं एक शरीर में रहने वाला व्यक्ति नही हूँ। मै परमात्मा से एक होने से जहाँ-जहाँ वह है, वहाँ-वहाँ मैं हूँ। संसारी अलख परमात्मा को न देख सकता हो तो वहीं कबीर को देखे। कबीर को जान लेगा तो तू परमात्मा को भी जान लेगा।" [7]

कबीर रचित साहित्य नैतिक और आध्यात्मिक ज्ञान का खजाना है, जो मानव स्थिति और आध्यात्मिक प्राप्ति के मार्ग में कालातीत अंतर्दृष्टि प्रदान करता है। प्रेम, करुणा, सत्य और विनम्रता पर इसकी शिक्षाएं समय और स्थान से आगे निकल गई हैं, जिसने भारत की सांस्कृतिक और आध्यात्मिक विरासत पर एक अमिट छाप छोड़ी है। अक्सर विभाजन और भौतिकवाद से चिह्नित दुनिया में, संत साहित्य में निहित नैतिक और आध्यात्मिक मूल्य प्रकाश की किरण के रूप में कार्य करते हैं, जो व्यक्तियों को अधिक दयालु और आध्यात्मिक रूप से पूर्ण जीवन की ओर मार्गदर्शन करते हैं।

भले ही संत कबीर का जन्म आज से ६०० वर्ष पूर्व हुआ है, किन्तु उनकी शिक्षाएँ आज भी प्रासंगिक है। यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि आज उनकी शिक्षाओं की आवश्यकता तत्कालीन युग की अपेक्षा अधिक है। उस समय हिन्दू मुस्लिम जनता आपस में मंदिर मस्जिद के प्रश्न पर संघर्षरत थी। धर्म के ठेकेदार धार्मिक उन्माद के चूल्हे पर स्वार्थ की रोटियाँ सेंकते थे, वैसा ही वर्तमान समय में हो रहा है। वोटों की कलुषित राजनीति ने इसे और भी गन्दा कर दिया। मंदिर-मस्जिद के नाम पर साम्प्रदायिक दंगे तब भी होते थे और आज भी हो रहे हैं। कबीर के अनुसार, कलियुग में आज एक बुराई यह है कि अब सच्चे संत-महात्मा नहीं मिलते। इस कलियुग में लालची, लोभी एवं मसखरों का ही ज्यादा आदर हो रहा है। कबीर के शब्दों में,

'कबीर' कलि खोटी भई, मुनियर मिलै न कोइ ।
लालच लोभी मसकरा, तिनकूं आदर होइ ।। [8]

कबीर के अनुसार लालच के वशीभूत जिस प्रकार मक्खी गुड़ में चिपक जाती है और पंख उस गुड से चिपटने से टूट जाते हैं। मक्खी मिठाई के लालच में फँस कर सिर धुनती और हाथ मलती रह जाती

है। [9] उसी प्रकार आज के बहुत से राजनेता सत्ता में सतत बने रहने के लिए अनेक प्रकार की साजिशें करते रहते हैं।

ऐसे समय में कबीर ने हिन्दुओं एवं मुसलमानों के उन दोषों को पूरी निर्भीकता से उजागर किया, जिनके आधार पर वे एक दूसरे के शत्रु हुए। आज भी कबीर की वाणी हिन्दू मुस्लिम धर्म की बुराइयों के शमन में सहायक है। इसलिए कबीर आज भी प्रासंगिक हैं। कबीर ने भक्ति का जो पथ दिखलाया उसको ध्यान में रखने पर भी कबीर की प्रासंगिकता में कोई कमी नहीं आती है। कबीरदास ने किसी विशेष सम्प्रदाय या पूजा पद्धति का प्रचार नहीं किया। इसीलिए उन्होंने परमेश्वर के लिए राम, कृष्ण, केशव, करीम, अल्लाह, खुदा रहमान, गोविंद, माधव आदि सभी प्रचलित नामों का ग्रहण किया और शुद्धाचरण तथा निर्भीकता पर आधारित भक्ति का सन्देश दिया।

विज्ञान एवं बौद्धिकता के अतिवाद से पीड़ित एवं अतृप्त मानवता के लिए क्या कबीर का भक्ति सन्देश शान्ति एवं तृप्ति प्रदान नहीं कर सकता है ? कबीर ने समाज में पाखण्ड, ब्राह्यचार, अन्धविश्वास एवं रूढ़ियों पर कुठाराघात किया। ऊँच नीच के भेद को समाज को कोढ़ बताते हुए उन लोगों को आड़े हाथों लिया जो ऊँच नीच के भेद की दीवारें खड़ी करके अपना स्वार्थ साधन करने में लगे थे। छल-कपट, हिंसा, असत्य, अज्ञान, भ्रम का डटकर विरोध किया तथा निश्चितता, सत्य, अहिंसा, ज्ञान एवं विवेक का मार्ग दिखाया। कबीर के शब्दों में,

ऊँचै कुल क्या जनमियां, जे करनी ऊँच न होइ ।
सोवरन कलस सुरै भर्या, साधु निंद्या सोइ ।। [10]

समाज में पाखण्ड आज भी व्याप्त है, दुराचरण की मात्रा घटने से स्थान पर बढ़ी है। छल-कपट, हिंसा, अज्ञान और विद्वेष ने समाज को खोखला कर दिया है। अतः कबीर की प्रासंगिकता वर्तमान सन्दर्भों में और भी बढ़ गयी है। कबीर ने पाखण्ड, ब्राहाचार, अन्धविश्वास एवं रूढ़ियों पर कुठाराघात किया। उंच नीच के भेद को समाज का कोढ़ बताते हुए उन लोगों को आड़े हाथों लिया, जो ऊँच-नीच के भेद की दीवारें खड़ी करके अपना स्वार्थ साधन करने में लगे थे। छल कपट, असत्य, हिंसा, अज्ञान, भ्रम का डटकर विरोध किया तथा निर्भीकता, सत्य, अहिंसा, ज्ञान एवं विवेक का मार्ग दिखाया।

कबीर के अनुसार चतुराई की शिक्षा तो यद्यपि तोता भी ग्रहण कर सकता है लेकिन फिर भी स्वचेतन न होने से वह पिंजरे में रहते-रहते जीवन पूरा व्यतीत करने को बाध्य है। इसी प्रकार जो मनुष्य दूसरों को ही शिक्षा देता रहता है और स्वयं उन शिक्षाओं पर स्वयं नहीं चलता है, यह ठीक उसी प्रकार है जो ज्ञान प्राप्त करके भी उसे क्रिया रूप में परिणित नहीं कर पाता तो वह भी व्यर्थ ही अपना जीवन व्यतीत करता है। कबीर के शब्दों में,

चतुराई सूवै पढ़ी, सोई पंजर माहिं ।
फिरि प्रमोधै आन कौं, आपण समझै नाहिं ।। [11]

कबीर के अनुसार इस संसार में उस व्यक्ति का दुश्मन कोई नहीं हो सकता जिसका मन शीतल (शांत) है, जिसमें अहंकार नहीं है। ऐसे व्यक्ति सबके प्रिय होते है और उस पर सब कृपा ही करते हैं अर्थात् मन की शीतलता एवं निर-अहंकारिता ही सबके स्नेह-भाजन बनने में सहायता प्रदान करती है। हरिश्चन्द्र वर्मा के अनुसार, "कबीर की आर्थिक जीवन सम्बन्धी विचारधारा समाजवादी चिन्तन पर आधारित मानी जा सकती है। वे आर्थिक समानता के पक्षधर थे, इसके लिये उन्होंने पूँजीपतियों की आंतरिक वृत्ति को ही उदार बनाकर वितरण की समस्या को हल करने की चेष्टा की। उन्होंने कनक और कामिनी की निरर्थकता सिद्ध करते हुए पूँजीपतियों में जकड़ी हुई संचय की मनोवृत्ति पर कुठाराघात किया। उन्होंने निर्धन और पूँजीपति दोनों को भाई-भाई भी कहा है। उनके अनुसार वास्तव मे निर्धन वह है जिसे हृदय मे राम के प्रति प्रेम का भाव न हो। इस अर्थ में पूँजीपति भी निर्धन है क्योंकि उनमे वे धन के भक्त है, भक्ति के नही इस प्रकार कबीर ने समाजवाद की विचारधारा को आज से सैकड़ों वर्ष पूर्व ही दिया था।" [12]

वैज्ञानिक उपकरणों एवं सुख सुविधा के साधनों को जुटाकर भले ही हम प्रगति का दावा करें, किन्तु हम मानवता के मोर्चे पर रंचमात्र भी प्रगति नहीं कर सके हैं। आज भी समाज में धार्मिक विद्वेष व्याप्त है, जाति-प्रथा ने अपनी जड़ों को मजबूत किया है, समाज में विषमता बढ़ी है, समरसता कहीं दिखाई नहीं देती है। ऊँच-नीच की भावना वर्तमान समय में खान-पान के स्तर पर चाहे समाप्त हो रही है, किन्तु विवाह संबंधों में अभी तक जाति वर्ण ही प्रमुख है। ऐसी स्थिति में कबीर की प्रासंगिकता पर कोई प्रश्न चिह्न नहीं लगाया जा सकता है। नारायण सिंह भण्डारी के अनुसार, "जिस प्रकार शरीर के भयंकर रोग जैसे-कैंसर, एड्स, प्रमुख ग्रंथियों के रोग (दिल, लिवर और गुर्दे की बीमारी), मधुमेह, दमा, लकवा, उच्च रक्तचाप आदि हैं। उससे भी भयंकर रोग हमारे मन के होते हैं जैसे-काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार। इन दोषों से हमारा दृष्टिकोण बदलता रहता है, हम अपने स्वार्थ-पूर्ति के लिए अनेक गलत कार्य करते रहते हैं और अनेक को कष्ट देते हैं। वही दिया हुआ कष्ट दोगुना होकर हमारे पास वापस आता है। हर एक वयस्क जानता है कि अच्छा क्या है और बुरा क्या है? लेकिन मन के इन दोषों से उसके अक्ल या बुद्धि पर परदा पड़ जाता है। या कहिए कि उसकी मति फिर जाती है और वह सही निर्णय नहीं ले पाता है।" [13]

कबीर के अनुसार, "हे मेरे स्वामी! परमात्मा! हमें इतना दीजिए जिसमें मेरे कुटुम्ब का पालन हो सके। मैं भी भूखा ना रहूँ अर्थात् मेरी भूख का निवारण भी हो जाए तथा मेरा आतिथ्य स्वीकार करने वाला कोई साधु भी भूखा न जावे अर्थात् जीवनयापन करने लायक ही धन-सम्पत्ति दे दीजिए। इसके अतिरिक्त मुझे कोई चाह नहीं हैं। व्यक्ति को संयमित जीवन जीते हुए अधिक की आशा नहीं करनी चाहिए। वे कल ही प्रासंगिक थे, आज भी प्रासंगिक हैं और आने वाले कल में भी प्रासंगिक रहेंगे। यह निःसंकोच कहा जा सकता है। अंत में कबीर के शब्दों में हम कह सकते है,
"मन रे तन कागद का पुतला।

लागै बूँद बिनसि जाइ छिन में, गरब कर क्या इतना ॥ टेक ॥
माटी खोदहिं भीत उसारैं, अंध कहै घर मेरा ॥
आवै तलब बाँधि लै चालैं, बहुरि न करिहै फेरा ॥
खोट कपट करि यहु धन जोर्या, लै धरती मैं गाड्यौ ।
रोक्यो घटि साँस नहीं निकसै, ठौर ठौर सब छाड्यौ ॥
कहै कबीर नट नाटिक थाके, मदला कौन बजावै ॥
गये पषनियाँ उझरी बाजी, को काहू कै आवै ॥18॥ [14]
[उसारैं = चुनता है, मदला =एक वाद्ययंत्र, पषनियाँ = पक्षी]

संदर्भ:

[1] चतुर्वेदी, आचार्य परशुराम, उत्तरी भारत की संत परम्परा, भारती भंडार, लीडर प्रेस, सं० २०२१, पृ० 21
[2] VAUDEVILLE, CHARLOTTE, A Weaver Named KABIR, OXFORD UNIVERSITY PRESS, New Delhi, Second Impression, 2017 Page-3
[3] वर्मा, डॉ० रामकुमार, संत कबीर, साहित्य भवन प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद, चतुर्थावृत्ति : १९५७ ईस्वी, पृ० ३०१
[4] अग्रवाल, पुरूषोत्तम, कबीर साखी और सबद, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2007, नौंवी आवृत्ति, 2020, पृष्ठ 36, भूमिका
[5] दैनिक जनसत्ता में अशोक वाजपेयी के 'कभी-कभार' आलेख 6 दिसम्बर, 2009 से
[6] बिसारिया, डॉ. सरोज, सर्वात्मचेता कबीर, संकल्प प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, 2002 (शुभानुशंसा - धर्मेन्द्र दास, कबीर आश्रम, कबीर नगर, इलाहाबाद)
[7] सूरती, उर्वशी, कबीर - जीवन और दर्शन, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, १९८०, पृ० ८
[8] शर्मा, प्रीतम प्रसाद, प्रणु शुक्ला, कबीर के सुबोध दोहे, साहित्यागार, जयपुर, 2018, पृ० 63
[9] वहीं, पृ० 98
[10] वहीं, पृ० 99
[11] वहीं, पृ० 65
[12] सम्पादक हरिश्चन्द्र वर्मा, 'मध्यकालीन भारत', भाग 1, पृष्ठ 440, संस्करण 2001 पृ० 35-36]
[13] (भंडारी, नारायण सिंह, चित्त शांति के स्रोत कबीर के दोहे, पुस्तक महल, दिल्ली, संस्करण, 2022, पृ० 7-8)
[14] हाडा, माधव, कालजयी कवि और उनका काव्य - कबीर, राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2022, पृ० 73